IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

लालू प्रसाद यादव के शासन-काल में सामाजिक न्याय & पिछड़ों का सशक्तीकरण (1990-2005)-एक अध्ययन

प्रेम प्रभात

सहायक प्राध्यापक-सह-अध्यक्ष, इतिहास विभाग

एस.पी.जैन कॉलेज, सासाराम

शोध-सारांश: प्राचीन काल से ही बिहार लोकतन्त्र की जननी रहा है। चूँकि लोकतन्त्र जनता की भागीदारी और समानता पर आधारित राजनीतिक प्रणाली है, इसलिए भागीदारी और समानता को लेकर बिहार में संघर्ष चिरस्थायी रहा है। समानता के पहले पैरोकार में एक महात्मा बुद्ध की यह कर्मभूमि रहा। लेकिन इतिहास के एक लंबे दौर में विषमता और उसमें भी जातीय उत्पीड़ान से यह प्रदेश अभिशप्त भी रहा। सामाजिक न्याय के लिए यह सदैव तत्पर और संघर्षरत रहा। आजादी की प्राप्ति के बाद लोक आकांक्षा यही रही की सब तरह के शोषण का अंत हो जाएगा, समानता और सहभागिता पर आधारित व्यवस्था कायम होगी, लेकिन ऐसा नहीं हो सका। निराशा के 40 वर्ष बीत जाने के बाद अंतत: 1990 में लालू प्रसाद यादव के नेतृत्व में एक ऐसी सरकार बनी जिसने ऐलानिया तौर पर पिछड़ों को न्याय दिलाने और सहभागिता सुनिश्चित करने का वादा किया। मंत्रियों की बड़ी संख्या पिछड़े वर्गों से थी। इसे समाजविज्ञानियों ने एक मूक क्रान्ति कहा जब पिछड़ों के वोट से पिछड़े मंत्री और पिछड़े मुख्यमंत्री बने थे। मंदिर-मस्जिद के संघर्ष के बीच सामाजिक न्याय उभर कर सामने आ चुका था। पहली बाद पिछड़ी जातियों के एक बड़े तबके में यह विश्वास पैदा हुआ कि उन्हीं के बीच से एक उनका मुख्यमंत्री है। लेकिन इस विश्वास के बावजूद आर्थिक प्रश्न कहीं पीछे छूट गए। इसी दौर ने राज्य से पलायन और जंगलराज के चरम दौर को देखा। प्रस्तुत अध्ययन में इन्हीं सब मुद्दों का वस्तुनिष्ठ विश्लेषण किया गया है।

कुंजी शब्द: *सामाजिक न्याय, सहभागिता, बिहार, लालू प्रसाद यादव, पलायन, जंगलराज, मूक क्रान्ति, जातीय संघर्ष*

विषय-प्रवेश:

बिहार में जनता दल ने लालू प्रसाद यादव के नेतृत्व में 1990 से 1997 तक शासन किया। जनता दल को बिहार में समाज के विभिन्न तबकों एवं वर्गों का समर्थन प्राप्त था। जनता दल के विघटन के बाद बिहार में लालू प्रसाद के ही नेतृत्व में राष्ट्रीय जनता दल का गठन हुआ। जब बिहार में लालू प्रसाद के नेतृत्व में जनता दल का प्रार्दुभाव हुआ, तो न केवल बिहार बल्कि सम्पूर्ण राष्ट्र एक नई सामाजिक क्रांति के दौर से गुजर रहा था। ऐसी ही सामाजिक क्रांति को क्रिस्टोफर जेफरलोट ने 'मौन क्रांति'[01] कहा था। 1990 से 1995 तक जनता दल अपना प्रथम कार्यकाल पूरा कर चुका था। इसी वर्ष होने वाले विधान सभा चुनाव में जनता दल ने लालू प्रसाद यादव के नेतृत्व में अपनी स्थिति और मजबूत कर ली थी। जिसमें मूल रूप से सीपीआई के पास 26 और सीपीएम के पास 6 सीटें थी। भारतीय जनता पार्टी के पास जो जनता दल के बाद सबसे बड़ा दल था, कुल 41 सीटें थी, जबकि नवगठित दल समता पार्टी के पास 7 सीटें थी। लालू प्रसाद यादव ने अपना प्रथम कार्यकाल सपफलतापूर्वक पूरा किया। जबकि उनके पास पूर्ण बहुमत नहीं था। वे अपना दूसरा कार्यकाल इसलिए पूरा नहीं कर पाए क्योंकि चारा घोटाले की घटना सामने आयी। नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक ने पाया कि पशुपालन के नाम पर जो कोष था, उससे धन की निकासी गलत तरीके से हुई थी। नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक ने जगन्नाथ मिश्रा तथा लालू प्रसाद यादव के कार्यकाल की जाँच की। भारतीय जनता पार्टी ने लालू प्रसाद के इस्तीफे की माँग की। उनका आरोप था कि प्रसाद न सिर्फ नैतिक रूप से जिम्मेदार है बल्कि इस घोटाले के सबसे बड़े लाभार्थी भी है। पार्टी ने सी.बी.आई. जाँच की माँग की। यह जाँच यू.एन. विश्वास जो सी.बी.आई. के उपनिदेशक

थे, के द्वारा की गई। यही वह समय था जब जनता दल में विभाजन हो गया।6 जुलाई, 1997 को दल के अध्यक्ष का चुनाव होना था, जिसका लालू यादव तथा उनके समर्थकों ने बहिष्कार किया तथा 5 जूलाई को एक समानांतर बैठक को आमंत्रित किया जिसमें राष्ट्रीय जनता दल का गठन हुआ। लालू प्रसाद यादव को राष्ट्रीय जनता दल का तथा शरद यादव को जनता दल का अध्यक्ष चुना गया। 25 जुलाई को लालू प्रसाद यादव ने मुख्यमंत्री पद से त्यागपत्र दे दिया। उसी दिन राष्ट्रीय जनता दल के विधायकों ने राबड़ी देवी को उनका उत्तराधिकारी नामांकित किया जो बिहार की प्रथम महिला मुख्यमंत्री बनी।

इसके बाद 1998 के लोकसभा चुनावों ने बिहार की राजनीति को नई दिशा दी। लालू प्रसाद के खेमे ने प्रसाद को गरीबों और पिछड़ों के मसीहा के रूप में प्रस्तुत किया। इसके साथ ही इस खेमे ने पिछड़ों के वोटों को लामबंद करने की कोशिश की। दूसरे खेमे ने लालू यादव को भ्रष्ट नेता बताया। वास्तव में बिहार में जाति एक महत्वपूर्ण स्थान रखती है। 1991 के लोकसभा चुनावों के बाद लालू यादव पिछड़ी जाति के नेता के रूप में उभरे।[02] निःसंदेह राम विलास पासवान, जो अनुसूचित जाति के नेता रहे हैं, उनकी सहायता की। 1995 के विधनसभा चुनावों ने लालू प्रसाद यादव को मजबूती प्रदान की और जनता दल ने महत्वपूर्ण कामयाबी हासिल की। इसके बाद नीतिश कुमार ने एक अलग दल बनाया तथा अपनी स्थिति कुर्मी जाति के कद्दावर नेता के रूप में स्थापित करने की कोशिश की तथा इन्होंने भारतीय जनता पार्टी से हाथ मिलाया, जो बिहार में ऊँची जातियों की पार्टी के रूप में देखी जाती थी। 1996 के चुनावों में लालू प्रसाद यादव का वोट प्रतिशत विखंडित रहा 543 लोकसभा सीटों में से उन्हें मात्र 22 सीटें मिली।

बिहार में लोकसभा चुनाव (1996) के परिणाम

क्रम	राजनीतिक पार्टी	चुनाव लड़े	जीते	दूसरा स्थान	तीसरा स्थान	प्राप्त मत%
1	जनता दल	0044	0022	0015	0004	31.90
2	भारतीय जनता पार्टी	0032	0018	0012	0002	20.50
3	समता पार्टी	0020	0006	0010	0004	14.50
4	भारतीय साम्यवादी दल	0007	0003	0004	0000	05.10
5	भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस	0054	0002	0010	0021	13.00
6	स्वतंत्र	1103	0001	0001	0006	05.40
7	झारखंड मुक्ति मोर्चा	0018	0001	0001	0003	02.60
8	समाजवादी पार्टी	0003	0001	0000	0001	01.30
9	अन्य	0021	0000	0000	0007	05.70
	कुल योग	1302	0054			100.00

https://www.indiavotes.com/pc/party_list/2/11

समता-भाजपा खेमे में 24 सीटें आयीं। 1998 के चुनावों में दो महत्वपूर्ण तथ्य सामने आए। लालू प्रसाद यादव चारा घोटाले में आरोपी बने तथा नए राजनीतिक दल राष्ट्रीय जनता दल का गठन किया गया। रामविलास पासवान और शरद यादव जनता दल में ही बने रहे। इस खेमे ने श्री लालू प्रसाद यादव के वोट% को खंडित किया।

राजनीतिक फूट & उद्देश्य से भटकाव:

1996 से 1999 तक के लोकसभा चुनावों के दौरान जनता दल/राष्ट्रीय जनता दल के सामाजिक तथा राजनीतिक मापदंडों में परिवर्तन दिखाई देने लगा था। दलित समुदाय उस समय भी जनता दल से उपजी राष्ट्रीय जनता दल को राजनीतिक रूप से समर्थन करती रही। रामविलास पासवान भी उन तमाम राजनीतिक दलों की तरह दलित एजेंडें पर बात करते थे लेकिन उससे कुछ खास अलग सामाजिक न्याय का कार्यक्रम और तस्वीर पेश नहीं कर पाए। 1990[03] में सामाजिक न्याय की पुरजोर वकालत करने वाले तीनों दलित एवं पिछड़े नेता अब अलग-अलग मंचों पर थे। नीतिश कुमार का समता पार्टी भाजपा से हाथ मिला चुके थे। राम विलास पासवान जनता दल में शरद यादव के साथ रह गए थे और लालू प्रसाद यादव राष्ट्रीय जनता दल का गठन कर चुके थे। 1990 से 1998 तक के बिहार में राजनीतिक उठापटक ने लालू यादव को ऊँची जातियों के वोटों पर ध्यान केंद्रित करने पर विवश किया। संभवतः 1990 के बाद यह पहली बार था कि लालू प्रसाद यादव ने कहा कि वह ब्राह्मणों के खिलाफ नहीं थे। जब उन्होंने अपने लोगों को प्रोत्साहित किया था, तब यह एक अलग

तरह का ब्राह्मणवाद का विरोध् था। मंडल आयोग की सिफारिशों को लागू करवाने के आंदोलन के दौरान इन्होंने एक बार कहा था कि, ''हमारी लड़ाई हजारों वर्षों के शोषण एवं ब्राह्मणवाद के खिलाफ है। हम यथास्थिति को बदलना चाहते है। हमारा कहना है कि जो उपाश्रित है उन्हें विशेष अवसर देना चाहिए। इन्होंने 'भूरा बाल' साफ करो का भी नारा दिया था।[04] भूरा बाल का मतलब भूमिहार, राजपूत, ब्राह्मण और लाला था। लेकिन 1999 में हुए लोक सभा चुनाव में पराजय की संभावना देखते हुए भी लालू प्रसाद यादव को ऊँची जातियों के वोटों के समर्थन पर विश्वास करना पड़ा। बक्सर और गोपालगंज में इन्होंने ऊँची जातियों के उम्मीदवारों को टिकट दिया। जिसमें इन्होंने कहा कि वे कभी भी ब्राह्मणों के विरोधी नहीं थे। साथ में कहा कि यादव और ब्राह्मण परंपरागत रूप से एक साथ रहे है। निःसंदेह इसका उद्देश्य भाजपा का सामना करना था। ब्राह्मणों ने लालू प्रसाद के उम्मीदवार शिवानंद तिवारी को वोट दिया। शिवानंद तिवारी भाजपा के उम्मीदवार से 11,606 वोटों से हार गए।

सामाजिक न्याय की कतिपय योजनाएँ & पहल

इसके साथ ही सन् 2000[05] में घोषित राष्ट्रीय जनता दल के घोषणा पत्र के मुद्दों का जिक्र करना आवश्यक है। राजद ने दलित समुदाय के लिए विकास कार्यक्रम की आवश्यकता पर जोर दिया। दलित समुदायों के लिए पक्के मकान बनाये जायेंगे। भूमिहीनों के लिए जीवन-यापन तथा उनके आवास निर्माण के लिए भूमि प्रदान की जाएगी। जहाँ अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा अल्पसंख्यक समुदाय के लोग रहते हैं, वहाँ बुनियादी सुविधएँ प्रदान की जायेंगी और इसके साथ-साथ उन्हें राज्य प्रशासन में सम्मानजनक स्थान दिया जाएगा। जल, बिजली तथा स्वास्थ्य जैसी सुविधएँ इन आवासीय क्षेत्रों में दी जाएगी। इससे अनुसूचित जाति एवं जनजाति के लोगों में पिछले 10 वर्षो से नई आशा का संचार हुआ कि राजद शैक्षणिक, सामाजिक तथा आर्थिक कार्यक्रमों में तेजी लायेगी ताकि समुदाय को उचित स्थान मिल सके। दलित इस राज्य की कुल जनसंख्या का 16.5% है।[06] वे संपूर्ण राज्य में फैले हुए हैं। रामविलास पासवान दलितों के सबसे लोकप्रिय नेताथे। यह भी सच है कि सम्पूर्ण दलित समुदाय पासवान को वोट नहीं देता, लेकिन 'दुसाध्' नामक जिस उपजाति से वे आते हैं, उसका वोट उनको मिलता है।

2009 के लोकसभा चुनावों में राजद-लोजपा गठबंधन को दलित वोट मिलें लेकिन नीतिश कुमार की सरकार की लोककल्याणकारी नीतियों ने दलित वोटों को अपनी ओर आकर्षित किया। नीतिश सरकार ने दलितों में से पिछड़ों को महादलितों वर्ग में विभाजित कर दिया। लोजपा दुसाध् के अलावा दूसरे दलितों को आकर्षित करने में असपफल रही। कांग्रेस ने उत्तर प्रदेश में जाटव के अलावा दूसरे दलितों को आकर्षित किया लेकिन यह बिहार में दलितों को आकर्षित कर पाने में असफल रही। बिहार में पिछले दशकों में राजनीति का ध्रुवीकरण दूसरे राज्यों की तरह नहीं हुआ है। राजनीतिक गोलबंदी सिर्फ ऊँची जाति और पिछड़ी जातियों के बीच हुई है। पिछड़ी जाति की राजनीति ने राज्य में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। बिहार में राजनीति के दोनों ध्रुवों पर पिछड़ी जातियाँ ही रही है जिसमें एक तरफ राजद तो दूसरी तरपफ कोयरी-कुर्मी जाति प्रतिनिधित्व वाली जनता दल (यु) थी।[07] सन् 2000 में श्री रामविलास पासवान ने लोकजन शक्ति पार्टी (लोजपा) बनाई। बिहार में सामाजिक न्याय की विचारधरा को आगे ले जाने वाले श्री लालू प्रसाद यादव, नीतिश कुमार तथा राम विलास पासवान अब अलग-अलग दलों का गठन कर चुके थे। ये तीनों पिछड़े तथा दलित जातियों से संबंध रखते थे। जनता दल ने निःसंदेह बिहार में सामाजिक तथा राजनीतिक चेतना लाई थी। 1996 में जनता दल का उदय वास्तव में बिहार में कांग्रेस तथा ऊँची जातियों के वर्चस्व का अंत था। जनता दल का तीन दलों में विखंडन होने से निःसंदेह सामाजिक न्याय के मुद्दे को नुकसान हुआ था।

लालू प्रसाद यादव की मसीहा की छवि[08]

2004 के नेशनल इलेक्शन वाच के सर्वेक्षण ने संकेत दिए कि लालू प्रसाद के बारे में विचार विभाजित थे। दलित, पिछड़े तथा उपाश्रित समुदाय के लोग अविकास के बावजूद लालू प्रसाद यादव को मसीहा मानते थे। इसके साथ ही ऊँची जाति के कुछ लोग भी ऐसा ही मानते थे। पिछड़ी जाति के लोगों की संख्या बिहार में काफी है फिर भी ऊँची जाति के लोगों का बिहार की राजनीति पर काफी दिनों से वर्चस्व रहा है। जब लालू प्रसाद यादव बिहार के मुख्यमंत्री बने तब पिछड़े वर्गो, यद्यपि बहुत कुछ बदलाव नहीं हो सका, ने आशा की किरण देखी। उन्होंने लालू प्रसाद यादव को सामाजिक न्याय प्रदान करने वाला नेता माना। यह विचार यादव जाति में अधिक प्रभावकारी था।

राजद के अधिक मजबूत होने का कारण यह था कि कोई भी पिछड़े का ऐसा नेता नहीं था जो लालू यादव को चुनौती दे पाए। इतने दिनों में सत्ता में रहने के बाद वे न केवल राजद के बड़े नेता थे बल्कि पिछड़े वर्ग के सशक्त नेता भी बन गए। यह भी सत्य है कि सभी पिछड़े मतदाता उन्हें समर्थन नहीं देते, लेकिन अभी भी वे राज्य के कद्दावर नेता थे। कांग्रेस अभी भी ऊँची जातियों के वर्चस्व में थी। भाजपा का

अभी भी जदयू के साथ गठबंधन था जिसमें मूलतः ऊँची जातियों की बहुलता थी। इस प्रकार लालू प्रसाद यादव 15[09] वर्षो तक जद/राजद के मजबूत नेता बने रहे। लालू प्रसाद यादव के नेतृत्व में जनता दल ने 1990 में सरकार बनाई तथा 1995 में पुनः सरकार में आई। 1995 के चुनाव से पहले जनता दल में विभाजन हो गया। समता पार्टी का गठन हुआ। इसी समय माय (मुस्लिम और यादव) समीकरण भी सामने आया। चारा घोटाले के सामने आने से लालू प्रसाद यादव के करिश्में में भी कमी आई।[10]

2004 के लोकसभा चुनाव के परिणामों ने संकेत दिया कि श्री लालू प्रसाद यादव का करिश्मा अब भी कायम है। सर्वेक्षण से पता चला कि सामाजिक रूप से उपेक्षित काफी लोग अभी भी उनके नेतृत्व में विश्वास रखते हैं। जबकि काफी लोग मानते हैं कि लालू प्रसाद यादव ने बिहार में अपराधियों को प्रोत्साहित किया जो पिछड़े और गरीब को सामाजिक न्याय नहीं दे सकता है।अधिकांश यह मानते हैं कि राजद के 15 वर्षों के शासन में केवल यादवों को ही फायदा हुआ है।

जमीन से जुड़े मुद्दों पर कन्नी काटना लेकिन न्याय का दंभ[11]

बिहार के सामाजिक-राजनीतिक जीवन में दलितों की स्थिति को प्रभावित करने वाला सबसे बड़ा सवाल जमीन का है। अधिकांश दलित भूमिहीन हैं एवं खेतिहर मजदूर के रूप में काम करते हैं। ये खेतिहर मजदूर के रूप में कम मजदूरी पर काम करने के लिए मजबूर है। लोजपा तथा बसपा (जो बिहार की छोटी शक्तियाँ हैं) इस सवल पर कन्नी काट जाते हैं। नक्सलवादियों ने सामंतवादी भूमिपतियों के शोषण के जवाब में दलितों को संगठित किया है। शोषण के खिलापफ जगे दलितों का दमन करने के लिए भूमिपतियों की कई जाति आधारित निजी सेनाएँ भी सामने आ गई। इन्होंने बंदूक और हिंसा के बल पर भूमिहीनों का दमन करने की कोशिश की। इस तरह के संघर्ष के बढ़ने का यही नतीजा हुआ कि बिहार में नब्बे के दशक के बाद कई वीभत्स नरसंहार हुए। लोकतांत्रिक राजनीति में हिंसा का कोई स्थान नहीं होना चाहिए।[12] लेकिन राज्य में नक्सलवादियों की हिंसात्मक कारवाईयाँ को भूमिपतियों और राज्यतंत्रा के शोषण, दमन और हिंसा के संदर्भ में देखने की जरूरत है। जिन तंत्रों में नक्सलवादी आंदोलनों का प्रभाव है, वहाँ खेतिहर मजदूरों की मजदूरी की दर में वृद्धि हुई है। इन्होंने भूमि सुधर के एजेंडे को भी जगाए रखा है। इस तरह के आंदोलनों ने भूमिपतियों द्वारा कराए जाने वाले बेगार को नियंत्रित किया है। साथ ही इन्होंने निम्न पिछड़ी जातियों और दलित महिलाओं पर अत्याचार को भी रोका है। इन आंदोलनों ने ग्रामीण समाज की अधर्् सामंती संरचना को कमजोर किया है। पिफर भी नक्सलवादी आंदोलन के बहुत सारे सार्थक योगदानों के बावजूद लोकतांत्रिक परिधि के बाहर रहने के कारण इसमें किसी आमूल-चूल बदलाव की उम्मीद नहीं की जा सकती है।

स्पष्टतः राजनीति में सक्रिय भागीदारी, समाज में इज्जत भरा स्थान और जिंदगी में समान रूप से आगे बढ़ने के संदर्भ में दलित वर्ग सामाजिक न्याय से बहुत दूर है।[13] दलितों के संदर्भ में सामाजिक न्याय की राजनीति का मतलब है- उत्पादन संबंधों में आमूलचूल बदलाव। संसदीय राजनीति में दलित का उभार हो, इसके लिए यह आवश्यक है कि एक ऐसा नेतृत्व उभरे जो कुनबापरस्ती, मौकापरस्ती और तात्कालिक मुद्दों में ही उलझे रहने की जगह दूरदृष्टि और उत्पादन संबंधें में बुनियादी बदलाव लाने के प्रति प्रतिब(हो। दलित वर्ग को सामाजिक न्याय के लिए लामबंद करने के लिए यह जरूरी है कि सभी दलित जातियों को एक राजनीतिक छतरी के नीचे लाने की कोशिश की जाए। साथ ही इसकी राजनीति को हाशिये पर पड़े दूसरे समूहों (उदाहरणार्थ- निम्न पिछड़ी जातियाँ, मुस्लिमों, महिलाओं आदि) से भी जोड़ने की जरूरत है। इसके अलावा इस तरह की राजनीति में कोरी राजनीतिक जरूरतों और रणनीति की जगह व्यापक बदलाव को महत्वपूर्ण स्थान मिलना चाहिए।

नि:औद्योगीकरण और पलायन का अभिशाप[14]

वास्तव में सामाजिक न्याय का स्वप्न आर्थिक सशक्तिकरण के अभाव में अधूरा है। 1990 के दशक के उपरांत बिहार में जिस राजनीतिक परिदृश्य ने जन्म लिया उसमें समाज का पिछड़ा और दलित तबका राजनीतिक रूप से तो निःसंदेह जाग्रत हुआ था किंतु इतना होना मात्रा सामाजिक न्याय के लक्ष्य की प्राप्ति के लिए कापफी नहीं था। यह सत्य है कि पिछड़ा और दलितों के लिए उदाहरणार्थ आवास और रोजगार के लिए अनेक योजनाएँ चलाई गई थी, किंतु उनका संतोषजनक क्रियान्वयन नहीं हो पाया। पफलतः राजनीतिक रूप से जागरूक हो चुका दलित वर्ग आर्थिक उन्नति की चाह में दूसरे राज्यों में विशेषतया मेट्रो[15] शहरों की ओर जाने लगा। इस पलायन के बाद जब कभी ये लोग बिहार की ओर वापस लौटे तो इनकी आकांक्षायें पहले से अध्कि बढ़ चुकी थी। शहर की चकाचौंध जाति-निरपेक्ष जीवन बीत चुका यह वर्ग जब कभी वापस लौटा तो उसने बिहार में भी वैसी ही सभ्यता की चाह रखी जिसका स्वाद वह दूसरे राज्यों में चख चुका था। दुभाग्यवश बिहार के पिछड़ों और दलितों का राजनीतिक समर्थन होने के बावजूद राष्ट्रीय जनता दल अपने शासनकाल में उनकी इस आकांक्षा को कभी पूरा नहीं कर पाया। पफलतः दलित और पिछड़े वर्गो का एक तबका राजद से अपने को दूर करने लगा था। दलितों में से शिक्षा

प्राप्त व्यक्तियों को रोजगार की आशा थी, श्रमिकों को बेहतर पारिश्रमिक की आशा थी। महिलाएँ सामाजिक सुविधओं की बाट जोह रही थी किंतु राज्य की सरकार उनकी इन आवश्यकताओं का कोई संतोषजनक समाधन देने में विपफल रही थी और यही कारण रहा कि राष्ट्रीय जनता दल को 2005 के विधनसभा चुनावों में करारी हार का सामना करना पड़ा।[16]

1990 में लालू प्रसाद यादव का अभ्युदय सामाजिक न्याय के मुद्दे को लेकर हुआ था। राजद की केंद्रीय धुरी अभी भी वही है। लेकिन सामाजिक न्याय की अवधरणा और अध्कि व्यापक हो गई है। दलित अब एक पिछड़े वर्ग के अतिरिक्त सचेत वर्ग भी हो गया है क्योंकि 1990 के बाद दलित चेतना[17] का बड़ी तेजी से विकास हुआ है। सामाजिक न्याय की अवधरणा अब सरकार की कृपा पर निर्भर संकल्पना से अध्कि महत्व रखने लगी है। यह अब गुणात्मक और संरचनात्मक सुधर की माँग करने लगी है। आश्चर्य है कि सामाजिक न्याय की इस संकल्पना पर बिहार के किसी राजनीतिक दल की कोई स्पष्ट राय नहीं है। शिक्षण संस्थाओं एवं रोजगार में अवसर से लेकर विधनमंडल में प्रतिनिध्त्वि तक हर मुद्दा इस संरचनात्मक सुधर की बाट जोह रहा है। आज की स्थितियों में यह अत्यंत आवश्यक हो गया है कि समावेशी विकास के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए सामाजिक अन्तर्वेषण का मार्ग अपनाया जाए। यह भी दीगर है कि लालू प्रसाद यादव के नेतृत्व में जन तक दल की सपफलता 1990 की परिस्थितियों के कारण संभव हो पायी थी, जब न सिर्फ मंडल आयोग की प्रतिवेदन[18] को रिपोर्ट लागू करने के कारण पिछड़ा वर्ग उद्वेलित हो गया था, वरन् एक राष्ट्रीय माहौल भी तैयार हुआ, जिसकी लहर का लालू प्रसाद यादव को पफायदा मिला। यह माहौल अब उपस्थित नहीं है अतः इसे आगे ले जाने के लिए राजद नेतृत्व को सक्रिय प्रयास करना होगा। यह राष्ट्रीय माहौल जो निर्मित हुआ उसे एक सकारात्मक नेतृत्व की आवश्यकता थी। लालू प्रसाद यादव के व्यक्तित्व और दृष्टि ने इस आवश्यकता की पूर्ति की थी। बिहार की जनता ने लालू प्रसाद यादव के इसी दमखम को देखते हुए उन्हें तीन बार विधनसभा में मौका दिया। लेकिन चैथी बार में बड़े पैमाने पर उन्हें एक करारी हार का सामना इसलिए करना पड़ा क्योंकि कहीं न कहीं लालू प्रसाद यादव सामाजिक न्याय की दृष्टि को बहुद आगे नहीं ले जा पाए। कारण यह था कि सामाजिक न्याय की प्रक्रिया का अंतिम और तार्किक पड़ाव क्या होगा इस संबंध में पिछड़े वर्गों की राजनीति करने वाले लगभग सभी दलों में एक स्पष्ट दृष्टि का अभाव है।[19] चूँकि दलित और पिछड़े समुदाय का एक तबका सामाजिक परिवर्तन का एक पड़ाव पार चुका था, मसलन शिक्षा, जागरूकता और चेतना की प्राप्ति कर चुका था। अब इस शिक्षित और सचेत वर्ग को दूसरे पड़ाव की आशा थी।

शिक्षा प्राप्त कर चुका दलित और पिछड़ा युवावर्ग अब रोजगार और अवसर की समानता की अपेक्षा रखने लगा जिसकी पूर्ति की योजना किसी भी पिछड़े वर्ग के हिमायती दल के पास नहीं थी। अपनी चैथी पारी में लालू प्रसाद यादव की करारी हार का एक बड़ा कारण यही था कि अपनी आधरभूत दृष्टिकोण को कहीं न कहीं भटक गया है और जिस मुद्दे को लेकर उनका उदय हुआ था, वही कहीं न कहीं पीछे छूट गया।

सभी पिछड़ों के लिए सामाजिक न्याय एक जैसा नहीं[20]

साथ ही यह भी ध्यान देने योग्य है कि सामाजिक न्याय की इस लहर ने दलित और पिछड़े वर्गों के बीच भी एक खाई उत्पन्न कर दी थी। अब भी भूमिपति पिछड़े भूमिहीन दलितों को अपने समकक्ष मानने को तैयार नहीं है और जिन दलितों ने मंडल आयोग की प्रतिवेदन का स्वागत करते हुए इसे सामाजिक क्रांति का उद्घोष माना, उन्हें इसके बदले बराबरी का दर्जा कभी नहीं मिला। समकालीन राजनीति की यह बड़ी माँग है कि वह इस बराबरी की दिशा में प्रयास करें और एक समतल समाज की प्राप्ति को सुगम बनाए। सामाजिक न्याय की जिस लहर ने 1990 के दशक में जन्म लिया, उसने अन्य पिछड़े वर्गों को सशक्त तो बनाया लेकिन दलितों की दिशा में सकारात्मक परिवर्तन हेतु प्रयास नहीं किए। पफलतः जहाँ पहले दलित वर्ग को सिपर्फ उच्च जातियों के प्रमुख, शोषण और हिंसा का शिकार होना पड़ता था। वहीं अब उनके लिए अन्य पिछड़े वर्गा के रूप में एक शोषक वर्ग ने भी जन्म ले लिया था जो अब तक कई क्षेत्रों में अपनी भूसंपदा के कारण दबंग होकर उभरा था।

अतः आज के युग में यह अत्यंत आवश्यक हो गया है कि यदि सामाजिक न्याय, समावेशी विकास और अन्तर्वेषण की राजनीति करने वाले किसी भी दल को राजनीतिक उदारवाद की अवधरणा को स्वीकार करते हुए संकीर्ण भावनाओं से उफपर उठना होगा। अतः राजद को यह समझ लेना होगा कि उपरोक्त मुद्दों पर एक बौद्धिक बहस का स्वागत करते हुए उसे सामाजिक न्याय के मार्ग पर अपनी समझ को विकसित करना होगा। यदि राजनीति सुधर की माँग कर रही हो तो उसे स्वीकार करके आगे बढ़ना ही संगत कदम कहलाएगा।[21]

राजद को अपनी पिछली हार से निराश होने के बजाय सबक लेना चाहिए क्योंकि राजद की हार के बावजूद उसे प्राप्त मतों का प्रतिशत यही बयान करता है कि दलित, पिछड़े और अल्पसंख्यकों का एक बड़ा वर्ग अभी भी राजद को अपनी आशा के रूप में देखता है। आवश्यकता तो इस बात की है कि दल की ओर से इस जनता को स्वस्थ, स्वच्छ और सार्थक विकल्प देने की कोशिश की जाये। यह

विकल्प तभी संभव है जब राजद दीर्घकालिक, सुनियोजित और समावेशी नीतियों के प्रति प्रतिब(ता दिखाए। यह विकल्प जमीनी सच्चाईयों से जुड़ा होना चाहिए। राजद को कोरे वादों से उफपर उठना पड़ेगा।

राजद को यह समझ लेना होगा कि सामाजिक न्याय की प्राप्ति तभी संभव है जब हम समतामूलक समाज की स्थापना कर पाएँगे जो हर प्रकार के दमन से मुक्त हो। यदि समाज का दलित तबका असमानतामूलक नीतियों के कारण इस दल का साथ छोड़ता है तो यह इस दल के लिए विध्वंसकारी हो सकता है। जिन चुनावों को राजद की अस्तित्व की लड़ाई के रूप में देखा जा रहा है वहाँ वास्तव में उसके पुनरोदय की पर्याप्त संभावनाएँ है और यह नितांत संभव है कि वह पहले से अध्कि सशक्त बनकर उभरे।

पिछले कुछ दशकों से दलित समुदाय के लोगों पर पिछड़ी जाति के दबंग जातियों ने न सिपर्फ शोषण किया है बल्कि हिंसा की है। पिछड़ी जातियों के सशक्तिकरण के ऐतिहासिक कारण हैं। औपनिवेशिक काल में 1871 के जनगणना के बाद जब ऊँची जातियों ने अपनी जाति के आधर पर संगठनों का गठन किया। उसी तर्ज पर पिछड़ी जातियाँ-गोलबंद हुई। इस पिछड़े जातियों के संगठन बनने लगे जैसे 1927 में त्रिवेणी संघ।

यह तथ्य भी महत्वपूर्ण है कि दलित समुदाय को आरक्षण संवैधानिक एवं सामाजिक कारणों से आजादी में मिल रही है।[22] भारत में दो आयोग बनी। प्रथम काला कालेकर आयोग (1952) तथा मंडल आयोग (1978)। वी.पी. सिंह के सरकार ने इसे लागू किया। दलित समुदाय ने सर्दन समतामूलक समाज के निर्माण में सकारात्मक सहयोग दिया तथा मंडल कमीशन से मिली आरक्षण को समर्थन किया। लेकिन यह पिछड़े 20-25 वर्षो में दलितों पर जो हिंसा हुई है। उसमें कापफी संख्या में पिछड़ी जातियों के लोग शामिल हैं। इन्होंने भी दलितों को उसी तरह व्यवहार किया जैसे कि ब्राह्मणों ने किया था। दलित सिपर्फ सामाजिक, आर्थिक रूप से ही नहीं बल्कि नियमित हिंसा का शिकार है। जातिवाद का प्रभुत्व आज भी कायम है। क्रिस्टोफर जैफरलोट अपनी पुस्तक- इंडिया आफ़टर 1950 में लिखते हैं कि दलितों पर हिंसा इसलिए होती है कि वह आज कमजोर हैं। प्रो. विवेक कुमार अपनी पुस्तक कास्ट एवं डेमोक्रेसी में लिखते हैं कि जाति को अभी भारत में ठीक से समझा नहीं गया और वह निकोलस डर्क की इस बात से सहमत नहीं हैं कि जाति औपनिवेशिक काल की देन है। कास्ट शब्द तो पुर्तगालियों की देन है जिसका अर्थ होता है शु(, जबकि भारत में जाति शब्द उससे पहले में प्रयोग होता है। उन्होंने कहा कि जातिवाद तथा जातीय चेतना में फर्क है। जातिवाद वह है जो ऊँची जातियों द्वारा प्रसंग होता है जिसका आधार प्रभुत्व है जबकि जातिवाद चेतना जातीय गोलबंदी है जिसका अर्थ है कि सकारात्मक रूप से विकास है।

जातीय चेतना & जातीय संघर्ष[23]

बिहार में अगर जाति के राजनीति की चर्चा की जाए तो यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि बिहार जातीय चेतना के साथ सचेत रहा है। वहाँ पर राजनीतिक चेतना ऐतिहासिक मौजूद रही है। मगध् साम्राज्य से लेकर चाणक्य रहे हैं। राजनीतिक रूप भी यह केन्द्र रहा है। गाँधी ने अपनी राजनीतिक प्रयोग चम्पारण से किया था। स्वतंत्रा भारत में बड़े-बड़े राजनीतिक प्रयोग हुए। जमींदारी उन्मूलन कानून 1950 में पास हो गया। विनोवा भावे जी ने भूदान आंदोलन चलाए। जब कांग्रेस के प्रभुत्व को बिहार ने भी चुनौती 1967 के चुनाव में मिलना शुरू हो गया। 1977 से 1989 से बिहार में कई बार कांग्रेस ने मुख्यमंत्री बदला। संभवतः यह उसकी हार का कारण रहा। बिहार में सम्पूर्ण क्रांति का नारा जयप्रकाश नारायण ने दिया। बिहार में ही 1979 में जनता पार्टी को सरकार ने ऊँची जातियों के लोगों को 3%आरक्षण का प्रावधन किया। लेकिन इस प्रदेश में स्वतंत्राता के बाद दलितों के हालात में कोई खास पफर्क नहीं आया। आरक्षण को पूरी तरह से लागू नहीं किया गया। 1990 के बाद दलितों ने जातीय हिंसों का वीभत्स रूप देखा जिसमें बथानी टोला है। इस घटना की जाँच के लिए आमिर दास कमीशन का गठन किया गया जिसे राज्य सरकार ने 2006 खारिज कर दिया।

अतः महत्वपूर्ण सवाल अभी भी कायम है कि बिहार में सामाजिक न्याय का कौन-सा प्रारूप 1990 से 1997 तक लागू किया। श्री लालू प्रसाद यादव के नेतृत्व में निश्चित तौर पर दलितों में राजनीतिक चेतना आयी, लेकिन इस चेतना की अंतिम निष्कर्ष तक ले जाने में वे सफल नहीं रहे। दलितों के आर्थिक अवसर पैदा नहीं हुए। इस चेतना का प्रयोग केवल राजनीतिक था। सामाजिक न्याय के लिए निश्चित तौर से आर्थिक एवं सामाजिक सशक्तिकरण का एक अहम हिस्सा है। भारत को एक सशक्त राष्ट्र निर्माण हेतु यह जरूरी है कि दलित समाज ऐतिहासिक रूप से दमित है, उसे समानता तथा एवं गरिमामय जीवन जीने के सुअवसर दिए जाए। यह निसंदेह सरकार एवं राज्य का दायित्व है लेकिन सामाजिक न्याय के लागू करने के लिए समाज की अहम भूमिका होनी चाहिए। तब हम सामाजिक न्याय से एक समतामूलक समाज की अंतिम पड़ाव तक पहुँच पायेंगे। शोषित, सामाजिक रूप से पिछड़ा एवं असमान, आर्थिक रूप से कमजोर एवं हाशिए पर है। 1990 के बाद भूमंडलीकरण से उपजे निजीकरण की नीति ने इसको और विस्तृत कर दिया है।

संदर्भ:

01. जैफ़रलॉट, क्रिस्टोफ़ (2003): ''इंडियाज़ साइलेंट रिवोल्यूशन: द राइज़ ऑफ द लोअर कास्ट्स इन नॉर्थ इंडिया'', हर्स्ट & कंपनी, लंदन, पृष्ठ 15 (ISBN: 1-85065-398-4)
02. संजय कुमार, ''जनता दल इन ड्राइवर सीट'', फ्रंटलाइन, मई 17, 1996, पृष्ठ 85
03. संजय कुमार, ''कास्ट पॉलिटिक्स इन बिहार'', घनश्याम शाह ;(सं.), कास्ट एण्ड डेमोक्रेटिक पॉलिटिक्स इन इण्डिया, परमानेन्ट ब्लैक, दिल्ली, 2000, पृष्ठ 317
04. गिरीश मिश्रा एवं ब्रज कुमार पाण्डेय, सोसियोलोजी एण्ड कास्टिज्म इन इंडिया: ए स्टडी ऑफ बिहार, नई दिल्ली, प्रगति पब्लिकेशन, 1996, पृष्ठ 387
05. वही, पृष्ठ 389-90
06. वही, पृष्ठ 319-20
07. वही, पृष्ठ 320-321
08. पूर्वोक्त, संजय कुमार, पृष्ठ 322
09. विजय नाम्बिसान, ''बिहार इन आइज़ ऑफ बिहोल्डर'', नई दिल्ली, पेन्गूइन, 2000, पृष्ठ 15
10. मुनेश्वर यादव, 'पॉलिटिक्स फ्रॉम बिलो'', इकोनोमिक एण्ड पोलिटिकल वीकली, खण्ड 39, न. 15, दिसम्बर 18, 2004, पृष्ठ 5510
11. कल्याणी शंकर, ''गार्ड्स ऑफ पावर : पर्सनाल्टी कल्चर एण्ड इंडियन डेमोक्रेसी, नई दिल्ली, मैकमिलन, 2002, पृष्ठ 219
12. वही, पृष्ठ 220-221
13. नीलम नीलकमल, लालू प्रसाद यादव: ए करिश्मेटिक लीडर, दिल्ली, हरआनंद पब्लिकेशन, 1996, पृष्ठ 46-47
14. वही, पृष्ठ 50
15. वही, पृष्ठ 51-52
16. वाल्टर हाउजर, ''जनरल इलेक्शन इन बिहार: पॉलिटिक्स, एडमिनिस्ट्रेटिव एट्रॉफी एण्ड एनार्की'', इकोनोमिक एण्ड पोलिटीकल वीकली, खंड 32, संख्या 41, 11-17 अक्टुबर, 1997, पृष्ठ 2602
17. संकर्षण ठाकुर, सवाल्टर्न साहेब, दिल्ली, पिकाडोर, 2006, पृष्ठ 110-11
18. वही, पृष्ठ 111-12
19. वही, पृष्ठ 113
20. वही, पृष्ठ 120-121
21. पूर्वोक्त, संजय कुमार, पृष्ठ 322
22. पूर्वोक्त, गिरीश मिश्रा एण्ड ब्रज किशोर पाण्डे, पृष्ठ 395-96
23. वही, पृष्ठ 397